ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume-1, Issue-1, April-June, 2024, pp.40-45

जे.बी. कृपलानी का नेहरूवादी केंद्रीकरण का वैचारिक प्रतिरोध (1947–1962)

प्रीति
शोधार्थी
इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
डॉ. कुमारी सुमन
सहायक प्राध्यापिका
इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा

सारांश
स्वतंत्र भारत के शुरुआती वर्षों में कांग्रेस पार्टी के भीतर विभिन्न वैचारिक धाराएँ सक्रिय थीं।इनमें सबसे महत्वपूर्ण विरोध गांधीवादी सिद्धांतों और नेहरूवादी आधुनिकतावाद के बीच था।आचार्य जे.बी. कृपलानी एक कट्टर गांधीवादी विचारक और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे, जिन्होंने स्वतंत्रता के बाद की सरकार की केंद्रीयकरण और तीव्र औद्योगीकरण की नीतियों पर गंभीर आपत्तियाँ दर्ज कीं।यह शोधपत्र 1947 से 1962 के कालखंड में कृपलानी द्वारा प्रस्तुत वैचारिक असहमति का विश्लेषण करता है।शोध में यह दर्शाया गया है कि कैसे कृपलानी का नैतिक नेतृत्व, विकेंद्रीकरण, ग्राम स्वराज और आत्मनिर्भरता की वकालत भारतीय लोकतंत्र में एक वैकल्पिक विकास मॉडल के रूप में उभरता है।यह विश्लेषण भारतीय राजनीति की वैचारिक विविधता, असहमति की संस्कृति और लोकतांत्रिक विमर्श को पुनः परिभाषित करता है।

सूचक शब्द : कृपलानी, गांधीवादी विचार, नेहरूवादी केंद्रीकरण, विकेंद्रीकरण, असहमति, औद्योगीकरण, वैकल्पिक विकास मॉडल, भारतीय लोकतंत्र

1. प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक नेतृत्व के समक्ष केवल सत्ता का हस्तांतरण ही नहीं था, बल्कि एक नए राष्ट्र के निर्माण का दायित्व भी था।इस नवस्वतंत्र भारत की शासन व्यवस्था, आर्थिक दिशा और सामाजिक संरचना को लेकर नेताओं के बीच गहन वैचारिक मतभेद उभरकर सामने आए।इन्हीं मतभेदों में से एक प्रमुख टकराव जवाहरलाल नेहरू और आचार्य जे.बी. कृपलानी के बीच था।नेहरू एक केंद्रीकृत शासन, तेज औद्योगीकरण और वैज्ञानिक सोच पर आधारित भारत की कल्पना करते थे, जहाँ विकास योजनाएँ ऊपर से नीचे की ओर संचालित होती थीं।इसके

विपरीत कृपलानी का विश्वास गांधीवादी सिद्धांतों में था, जिनमें ग्राम स्वराज, सत्ता का विकेंद्रीकरण, आत्मनिर्भरता और नैतिक मूल्यों की राजनीति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था।[1] कृपलानी का मानना था कि अगर भारत को एक जीवंत और लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाना है तो सत्ता का वितरण जनसामान्य के स्तर तक होना चाहिए।उनका दृष्टिकोण यह था कि औद्योगीकरण के नाम पर यदि सत्ता और संसाधनों का केंद्रीकरण किया गया, तो इससे सामाजिक विषमता, प्रशासनिक दुराचार और लोकतंत्र का क्षरण होगा।[2] यह शोधपत्र कृपलानी द्वारा प्रस्तुत इन्हीं विचारों और नेहरू के केंद्रीकरणवादी दृष्टिकोण के बीच के वैचारिक संघर्ष का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें यह विश्लेषण किया गया है कि कृपलानी की असहमति केवल राजनीतिक विरोध नहीं थी, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र के भीतर एक वैकल्पिक विकास मॉडल की सैद्धांतिक पेशकश भी थी। कृपलानी ने जिस गांधीवादी लोकनीति की पैरवी की, वह न केवल भारतीय समाज की संरचना के अनुरूप थी, बल्कि आज भी राजनीतिक केंद्रीकरण और जन-विमुख नीतियों के संदर्भ में एक प्रासंगिक विमर्श प्रस्तुत करती है।अतः इस अध्ययन के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कृपलानी की असहमति भारतीय लोकतंत्र की अवधारणा, विकास की दिशा और सत्तातंत्र की संरचना के संबंध में किस प्रकार एक वैकल्पिक विचारधारा को जन्म देती है और उसका दीर्घकालिक ऐतिहासिक महत्व क्या है।

2. कृपलानी का वैचारिक अधिष्ठान

आचार्य जे.बी. कृपलानी का वैचारिक अधिष्ठान गांधीवादी सिद्धांतों की ठोस और नैतिक नींव पर आधारित था।वे केवल गांधीजी के राजनीतिक सहयोगी नहीं थे, बल्कि उनके विचारों के गहरे अनुयायी और व्याख्याता भी थे।कृपलानी ने गांधीजी की नैतिक राजनीति, अहिंसा, विकेंद्रीकरण, ग्राम स्वराज और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों को स्वतंत्र भारत की शासन प्रणाली में अंतर्निहित करने का गंभीर प्रयास किया।उनके लिए राजनीति केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं थी, बल्कि यह एक नैतिक और लोककल्याणकारी उत्तरदायित्व था।वे मानते थे कि यदि सत्ता का केंद्रीकरण होता है और नीति-निर्माण का कार्य केवल एक सीमित शासक वर्ग के हाथों में चला जाता है, तो इससे न केवल लोकतंत्र कमजोर होगा, बल्कि जनसामान्य का सरकार पर विश्वास भी डगमगाएगा।[3] कृपलानी की यह दृष्टि गांधीवादी अवधारणाओं से सीधी प्रेरित थी, जिनमें सत्ता को नीचे तक—ग्राम और समुदाय स्तर तक—स्थानांतरित करने की कल्पना की गई थी।

कृपलानी की राजनीतिक सोच का मूल आधार यह था कि भारत जैसे विविधतापूर्ण और बहुस्तरीय समाज में केंद्रीकृत शासन व्यवस्था दीर्घकालिक रूप से सफल नहीं हो सकती।उनके विचार में प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय और ग्राम को अपने निर्णय लेने की स्वायत्तता मिलनी चाहिए।उन्होंने ग्राम स्वराज की अवधारणा को केवल एक आर्थिक या प्रशासनिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि लोकतंत्र के एक जीवंत रूप के रूप में देखा।उनका विश्वास था कि यदि ग्राम स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति होगी, तो शासन अधिक जवाबदेह, पारदर्शी और समावेशी होगा।कृपलानी सादगीपूर्ण जीवन शैली और सार्वजनिक संसाधनों के विवेकपूर्ण प्रयोग के पक्षधर थे।उन्होंने यह मान्यता दी कि आधुनिक

ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume-1, Issue-1, April-June, 2024, pp.40-45

भारत को भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक उत्थान की भी आवश्यकता है, और इसके लिए नीति और नेतृत्व में ईमानदारी, पारदर्शिता और सेवा भाव अत्यावश्यक हैं।[4]

कृपलानी गांधीवादी विचारधारा को केवल आदर्शवाद नहीं मानते थे, बल्कि उन्होंने उसे व्यावहारिक राजनीति में लागू करने का प्रयास भी किया।उन्होंने सत्ता की आलोचना को विपक्ष की भूमिका का अभिन्न अंग माना और संसद में सत्तारूढ़ दल की नीतियों पर तीखी लेकिन मर्यादित टिप्पणियाँ कीं। उनका मानना था कि लोकतंत्र में असहमति राष्ट्रविरोधी नहीं होती, बल्कि यह उसकी शक्ति होती है।कृपलानी की राजनीतिक शैली में स्पष्टवादिता, निर्भीकता और वैचारिक दृढ़ता दिखाई देती थी। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन में कभी नैतिक समझौता नहीं किया, चाहे वह कांग्रेस अध्यक्ष पद का त्याग हो या संसद में नेहरू सरकार की आलोचना।[5]

कृपलानी ने यह भी स्पष्ट किया कि औद्योगीकरण यदि मानव-केंद्रित और पर्यावरण-संवेदनशील न हो, तो वह सामाजिक विषमता को बढ़ावा देगा।उन्होंने बड़े उद्योगों के पक्ष में लघु उद्योगों की उपेक्षा, और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अनदेखी को खतरनाक बताया।उनका विश्वास था कि आत्मनिर्भरता केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं, बल्कि स्थानीय स्तर पर भी विकसित होनी चाहिए।उन्होंने शिक्षा प्रणाली, स्वास्थ्य सेवाओं और कृषि सुधारों में जन-संवेदनशीलता और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नीतियों की आवश्यकता पर बल दिया।[6]

कृपलानी का वैचारिक अधिष्ठान हमें यह सिखाता है कि सशक्त लोकतंत्र केवल संस्थाओं और चुनावों से नहीं, बल्कि विचारों, मूल्यों और नागरिक सहभागिता से निर्मित होता है।उन्होंने वैकल्पिक राजनीति का जो रास्ता दिखाया, वह आज के भारत के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है।जब राजनीतिक विमर्श में विचारधारात्मक गहराई और नैतिकता का अभाव दिखता है, तब कृपलानी का उदाहरण हमें राजनीति की मूल आत्मा की याद दिलाता है।उनका गांधीवादी अधिष्ठान केवल अतीत का आदर्श नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक आवश्यक मार्गदर्शन है।

3. नेहरू का केंद्रीयीकृत मॉडल: एक संक्षिप्त विवेचन

स्वतंत्र भारत के निर्माण की प्रक्रिया में पंडित जवाहरलाल नेहरू की दृष्टि केंद्रीय भूमिका में रही। उन्होंने भारत को एक आधुनिक, औद्योगीकृत, समाजवादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त राष्ट्र के रूप में विकसित करने की नीति अपनाई।उनका मानना था कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद से मुक्त होकर भारत को प्रगति की दिशा में अग्रसर करने के लिए व्यापक योजना आधारित विकास की आवश्यकता है।इस उद्देश्य से उन्होंने 1950 में योजना आयोग की स्थापना की, जो राष्ट्रीय विकास की पंचवर्षीय योजनाओं का नियोजन और निगरानी करता था।इसके माध्यम से उन्होंने राज्य की सक्रिय भूमिका सुनिश्चित की, जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, भारी उद्योग, विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में सरकारी निवेश के द्वारा सामाजिक परिवर्तन को आगे बढ़ाया जा सके।साथ ही, उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की नींव रखी और इन संस्थानों को विकास के इंजन के रूप में प्रस्तुत किया।[7]

ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume 1, Issue-1, April-June, 2024, pp 40-45

नेहरू का यह विकास मॉडल "टॉप-डाउन" यानी ऊपर से नीचे की ओर नीतियाँ थोपने वाले ढांचे पर आधारित था, जिसमें सरकार निर्णय लेती थी और जनता उन निर्णयों की निष्पादन इकाई बनती थी।बड़े बाँधों को "आधुनिक भारत के मंदिर" कहा गया और विशाल परियोजनाओं के माध्यम से उन्होंने भारत को तकनीकी आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ाया।नेहरू की दृष्टि में राष्ट्र निर्माण का तात्पर्य था कि वैज्ञानिक सोच, धर्मनिरपेक्षता और औद्योगिक समृद्धि को प्राथमिकता दी जाए ताकि देश जातिवाद, अंधविश्वास और गरीबी जैसे पारंपरिक अवरोधों से मुक्त हो सके।उन्होंने राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि मानते हुए भाषा, धर्म और क्षेत्रीयता के विभेदों को कम करने की दिशा में काम किया।

हालाँकि नेहरू का दृष्टिकोण उस समय की परिस्थितियों में यथोचित प्रतीत होता था, किंतु इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि सत्ता और संसाधनों का केंद्रीकरण हुआ।स्थानीय शासन, ग्राम पंचायतों और लघु उद्योगों जैसे गांधीवादी स्तंभों को हाशिए पर डाल दिया गया।सत्ता का अधिकतम नियंत्रण दिल्ली और राज्यों की राजधानियों में केन्द्रित हो गया, जिससे ग्रामीण भारत की भागीदारी केवल योजनाओं के निष्पादन तक सीमित रह गई।यह परिस्थिति गांधीवादी विचारधारा के पूर्णतः विपरीत थी, जिसमें ग्राम स्वराज का अर्थ था प्रत्येक ग्राम की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वायत्तता।[8]

आचार्य जे.बी. कृपलानी ने नेहरू के इस केंद्रीकरणवादी मॉडल की तीव्र आलोचना की।उन्होंने तर्क दिया कि यह दृष्टिकोण भारत की आत्मा से विमुख है और लोकतंत्र की बुनियादी अवधारणा के विरुद्ध है।कृपलानी का मानना था कि योजनाएं यदि ऊपर से थोपी जाएँगी, तो वे जन-संवेदनशील नहीं होंगी और जमीनी स्तर पर उनकी प्रभावशीलता कमजोर हो जाएगी।उन्होंने यह भी इंगित किया कि राज्य-नियंत्रित अर्थव्यवस्था में भ्रष्टाचार, नौकरशाही का दमन और राजनीतिक दुरुपयोग की संभावना अधिक होती है।कृपलानी ने संसद में कई बार यह प्रश्न उठाया कि क्या ऐसा भारत ही गांधी का सपना था? उन्होंने इसे "अधिनायकवादी प्रवृत्ति" की संज्ञा दी और चेताया कि यदि सत्ता के केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को रोका नहीं गया, तो यह भारत की लोकतांत्रिक संरचना के लिए घातक सिद्ध होगी।

नेहरू के मॉडल की एक और महत्वपूर्ण आलोचना यह रही कि इसने आर्थिक विषमता को दूर करने के बजाय उसे नया स्वरूप प्रदान किया।शहरीकरण और औद्योगीकरण ने एक नया शासक वर्ग उत्पन्न किया, जो ग्रामीण भारत से कटा हुआ था।इसने भारत में "दो अर्थव्यवस्थाएँ" विकसित कर दीं—एक औपचारिक, उच्च-तकनीकी शहरी अर्थव्यवस्था और दूसरी अविकसित, कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था।कृपलानी इस खाई को लोकतंत्र के लिए अत्यंत हानिकारक मानते थे और इसके समाधान के रूप में विकेंद्रीकृत नियोजन और स्थानीय भागीदारी पर बल देते थे।

इस प्रकार नेहरू का केंद्रीयीकृत विकास मॉडल अपने समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था, लेकिन उसने भारतीय समाज के पारंपरिक ढांचों और लोकतांत्रिक अपेक्षाओं को नजरअंदाज किया।कृपलानी जैसे गांधीवादी नेताओं ने जिस तरह इसकी आलोचना

की, वह आज भी विकास और लोकतंत्र के बीच संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक है।यह विवेचन हमें यह समझने में मदद करता है कि सत्ता और संसाधनों का केंद्रीकरण, चाहे वह आधुनिकता के नाम पर हो, अगर जनसहभागिता और नैतिक मूल्यों से विहीन हो जाए, तो वह लोकतंत्र के लिए चुनौती बन सकता है।

4. कृपलानी की असहमति की प्रमुख घटनाएँ (1947–1962)

1947 से 1962 के कालखंड में आचार्य जे.बी. कृपलानी की वैचारिक असहमति अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के रूप में उभरी, जिनमें उनके नैतिक साहस, गांधीवादी दृष्टिकोण और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।इन वर्षों के दौरान उन्होंने न केवल सत्तारूढ़ दल की आलोचना की, बल्कि एक वैकल्पिक राजनीतिक धारा प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया।कृपलानी की असहमति केवल निजी विचारों तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह भारत के लोकतांत्रिक भविष्य के प्रति एक सजग चेतावनी के रूप में सामने आई।[9]

1947 में जब कृपलानी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे, तब उन्हें यह अनुभव हुआ कि सरकार के मंत्रिमंडल और कार्यकारी निर्णयों में अध्यक्ष की भूमिका को नगण्य बना दिया गया है। प्रधानमंत्री नेहरू और उनके सहयोगियों ने संगठन और सरकार के बीच स्पष्ट सीमाएं बनानी शुरू कर दी थीं।कृपलानी को यह विचार अस्वीकार्य लगा कि कांग्रेस अध्यक्ष केवल एक प्रतीकात्मक पद बनकर रह जाए, जबकि नीति-निर्माण और कार्यान्वयन की सभी शक्तियाँ मंत्रिमंडल के पास केंद्रित हों।इस कारण उन्होंने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया।यह निर्णय उनके भीतर व्याप्त नैतिक असंतोष और संगठनात्मक लोकतंत्र की भावना को दर्शाता है।उनका त्यागपत्र गांधीवादी सिद्धांतों के संरक्षण और संगठन की आत्मा को जीवित रखने का प्रयास था।

इसके बाद संसद में कृपलानी की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही।वे पहले ऐसे वरिष्ठ नेता थे जिन्होंने स्वतंत्र भारत की संसद में सत्तारूढ़ सरकार की नीतियों पर खुली और स्पष्ट आलोचना की।उन्होंने यह विचार स्थापित किया कि संसद का उद्देश्य केवल विधायिका का समर्थन करना नहीं है, बल्कि सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित करना भी है।उनके भाषण केवल तात्कालिक नीतियों पर टिप्पणी नहीं होते थे, बल्कि उनमें नैतिक मूल्य, प्रशासनिक पारदर्शिता और जनता के अधिकारों की गूंज होती थी।उन्होंने बार-बार यह स्पष्ट किया कि सत्ता के लिए नैतिक आधार सबसे ज़रूरी है, और यदि वह नहीं रहा, तो लोकतंत्र केवल एक औपचारिक प्रणाली बनकर रह जाएगा।[10]

1951 में कृपलानी ने कांग्रेस पार्टी को छोड़ दिया और 'किसान मजदूर प्रजा पार्टी' (KMPP) की स्थापना की।यह निर्णय केवल राजनीतिक असहमति का परिणाम नहीं था, बल्कि एक सैद्धांतिक संघर्ष की परिणति भी था।कृपलानी ने महसूस किया कि कांग्रेस पार्टी, सत्ता में आने के बाद, अपने मूल्यों से भटक रही है और उसका चरित्र एक केंद्रीकृत प्रशासनिक संस्था जैसा होता जा रहा है। KMPP के माध्यम से उन्होंने एक वैकल्पिक विकास दृष्टिकोण प्रस्तुत किया—ऐसा दृष्टिकोण जो ग्राम केंद्रित, जन-भागीदारी आधारित और नैतिक राजनीतिक सिद्धांतों से प्रेरित था।यद्यपि यह दल

चुनावों में व्यापक सफलता नहीं प्राप्त कर सकी, परंतु उसने भारतीय लोकतंत्र में विचारधारा आधारित विपक्ष की परंपरा को जन्म दिया।

कृपलानी ने सत्ता के अत्यधिक केंद्रीकरण को भविष्य के लिए घातक बताया।उन्होंने चेतावनी दी थी कि यदि यह प्रवृत्ति जारी रही, तो भारत में अधिनायकवादी प्रवृत्तियाँ पनप सकती हैं।उनके इस विचार की पुष्टि इतिहास ने उस समय की जब 1975 में इंदिरा गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा की गई।कृपलानी की भविष्यवाणी उस समय पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध हुई, जब लोकतांत्रिक संस्थाओं का ह्रास और नागरिक स्वतंत्रताओं का हनन हुआ।उन्होंने यह भी कहा था कि यदि असहमति को दबाया गया, तो लोकतंत्र केवल नाम का रह जाएगा और सत्ताधारी वर्ग निरंकुशता की ओर अग्रसर होगा।[3]

इन सभी घटनाओं ने कृपलानी को एक ऐसे नैतिक राजनीतिज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित किया, जो सत्ता से अधिक सिद्धांतों को प्राथमिकता देता था।उनका समर्पण केवल आलोचना तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने अपने जीवन की प्रत्येक अवस्था में लोकतंत्र, स्वराज और नैतिकता को केंद्र में रखा। उनके द्वारा व्यक्त की गई असहमति नकारात्मक नहीं थी, बल्कि वह लोकतंत्र के भीतर एक रचनात्मक संवाद, सुधार और जनभागीदारी को बढ़ावा देने का माध्यम थी।कृपलानी की यह भूमिका भारतीय राजनीति में असहमति की गरिमा और सैद्धांतिक प्रतिबद्धता का अद्वितीय उदाहरण है।

5. कृपलानी और वैकल्पिक विकास मॉडल

आचार्य जे.बी. कृपलानी का विकास संबंधी दृष्टिकोण मूलतः गांधीवादी विचारों से प्रेरित था, जिसमें 'ग्राम स्वराज' की अवधारणा केंद्रीय स्थान रखती थी।वे मानते थे कि भारत जैसे बहुलतावादी, कृषि-प्रधान और सामाजिक रूप से विविध देश के लिए विकास का मॉडल 'नीचे से ऊपर' होना चाहिए, न कि 'ऊपर से नीचे'।उनके अनुसार, विकास की प्रक्रिया तभी सार्थक होगी जब वह जनता के जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं, स्थानीय परिस्थितियों और सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को ध्यान में रखते हुए तैयार की जाए।कृपलानी ने केंद्रीकृत नियोजन के विपरीत विकेन्द्रीकृत योजना-निर्माण का समर्थन किया, जिसमें ग्राम पंचायतों, स्थानीय निकायों और समुदायों की भागीदारी अनिवार्य हो।उनका विश्वास था कि यदि योजनाएं स्थानीय स्तर पर बनेंगी, तो उनमें न केवल जन-संवेदनशीलता होगी, बल्कि संसाधनों का अधिक न्यायपूर्ण वितरण भी संभव होगा।[6]

कृपलानी ने लघु उद्योगों को ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मेरुदंड माना।उन्होंने बड़े पूंजीगत निवेश वाले उद्योगों की आलोचना करते हुए कहा कि वे न केवल संसाधनों की असमानता को बढ़ाते हैं, बल्कि श्रम की गरिमा को भी समाप्त करते हैं।इसके विपरीत, लघु और कुटीर उद्योगों से न केवल स्थानीय संसाधनों का सदुपयोग होता है, बल्कि स्वावलंबन और रोजगार के अवसर भी सृजित होते हैं। उन्होंने शिक्षा को केवल साक्षरता तक सीमित न मानकर लोक-शिक्षा के रूप में देखा, जिसमें नागरिक चेतना, नैतिकता और समुदाय आधारित विकास की समझ उत्पन्न हो।[10]

ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume-1, Issue-1, April-June, 2024, pp.40-45

उनकी दृष्टि में योजनाएं केवल आर्थिक उन्नति का उपकरण नहीं थीं, बल्कि वे सामाजिक न्याय, नैतिक पुनर्गठन और नागरिक सशक्तिकरण का माध्यम भी होनी चाहिए।कृपलानी का यह वैकल्पिक विकास मॉडल उस समय की मुख्यधारा नीति-निर्माण के प्रतिकूल अवश्य था, लेकिन इसमें एक मानवीय संवेदनशीलता, लोकतांत्रिक भागीदारी और नैतिकता का समावेश था जो आज भी प्रासंगिक है।उन्होंने यह सिद्ध किया कि विकास केवल आंकड़ों और परियोजनाओं में नहीं होता, बल्कि वह तभी स्थायी होता है जब वह समाज के सबसे निचले स्तर तक संवेदित और समर्पित हो।

6. आलोचना और योगदान

आचार्य जे.बी. कृपलानी का राजनीतिक जीवन उन दुर्लभ उदाहरणों में शामिल है, जहाँ सिद्धांतों को सत्ता से ऊपर रखा गया।यद्यपि उन्हें कभी नेहरू या पटेल जैसी राजनीतिक मान्यता नहीं मिली और उनकी विचारधारा मुख्यधारा की नीतियों में प्रबल रूप से स्थापित नहीं हो सकी, फिर भी उनका योगदान भारतीय लोकतंत्र की आत्मा को समृद्ध करने में अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।कृपलानी ने अपने पूरे राजनीतिक जीवन में यह स्पष्ट किया कि असहमति को राष्ट्र-विरोध नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि यह लोकतंत्र की जीवंतता और उसकी नैतिक संरचना का आवश्यक अंग है। उन्होंने दिखाया कि सत्ता की आलोचना एक जिम्मेदार नागरिक और जनप्रतिनिधि की भूमिका होती है, और इसे व्यक्तिगत विरोध या विद्वेष के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए।

कृपलानी की सबसे बड़ी ताकत उनका नैतिक साहस और स्पष्टवादिता थी।वे कभी राजनीतिक चापलूसी या पद-लाभ की राजनीति का हिस्सा नहीं बने।जब भी उन्होंने महसूस किया कि सत्ता और नीतियाँ जनहित से भटक रही हैं या गांधीवादी मूल्यों की अवहेलना कर रही हैं, उन्होंने खुलकर अपनी असहमति दर्ज की।चाहे वह कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा हो या संसद में सरकार की आलोचना, कृपलानी ने अपनी बात हमेशा दृढ़ता और नैतिक तर्क के साथ रखी।उनका संवाद शैली तर्कसंगत, संयमित और जनता के प्रति जवाबदेह थी, जिससे वे लोगों के बीच भरोसे का प्रतीक बने रहे।

उनका एक बड़ा योगदान यह भी रहा कि उन्होंने भारतीय राजनीति में एक वैकल्पिक विमर्श को न केवल जीवित रखा, बल्कि उसे सैद्धांतिक आधार भी प्रदान किया।उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि गांधीवादी राजनीति, विकेंद्रीकरण और नैतिक मूल्यों पर आधारित शासन प्रणाली केवल आदर्श नहीं है, बल्कि व्यावहारिक भी है।उनके विचारों और व्यवहार से यह संदेश स्पष्ट होता है कि सत्ता की सीमाओं को चिन्हित करना और उसे नियंत्रित करना लोकतांत्रिक प्रणाली का अनिवार्य हिस्सा है। कृपलानी की राजनीति ने यह सिद्ध किया कि जब सरकारें आत्ममुग्ध हो जाती हैं, तब असहमति ही लोकतंत्र को पुनर्जीवित करने का कार्य करती है।

इस दृष्टि से कृपलानी का योगदान सतह पर भले ही सीमित प्रतीत हो, परंतु वैचारिक स्तर पर उन्होंने भारतीय लोकतंत्र की नींव को गहराई और व्यापकता प्रदान की।उनका जीवन इस बात का उदाहरण है कि राजनीति केवल सत्ता का खेल नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायित्व की सच्ची अभिव्यक्ति भी हो सकती है।इस प्रकार कृपलानी की आलोचना और योगदान भारतीय

ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume-1; Issue-1, April-June, 2024, pp 40-45)
राजनीतिक संस्कृति में असहमति, नैतिकता और वैकल्पिक चिंतन की सतत परंपरा के संवाहक के रूप में स्थापित होते हैं।

7. निष्कर्ष

आचार्य जे.बी. कृपलानी का नेहरूवादी केंद्रीकरण के प्रति विरोध केवल तत्कालीन राजनीतिक नीतियों या सत्ता-संघर्ष तक सीमित नहीं था, बल्कि वह भारत की आत्मा, उसकी सामाजिक संरचना, और लोकतांत्रिक चेतना से गहराई से जुड़ा एक वैचारिक प्रश्न था।उन्होंने जिस गांधीवादी दृष्टिकोण को आत्मसात किया और सार्वजनिक जीवन में उसका पालन किया, वह इस बात का प्रमाण था कि भारत जैसे विविध, बहुसांस्कृतिक और ग्रामीण जनसंख्या-प्रधान राष्ट्र में सत्ता का विकेंद्रीकरण और नैतिक नेतृत्व ही स्थायी लोकतंत्र की नींव हो सकते हैं।कृपलानी का विरोध एक रचनात्मक असहमति थी, जो लोकतंत्र के भीतर सुधार और पुनरावलोकन की प्रक्रिया को सक्रिय रखती है।उन्होंने स्पष्ट किया कि सत्ता की आलोचना करना राष्ट्र-विरोध नहीं, बल्कि लोकतंत्र का एक आवश्यक अवयव है।

इस शोध के माध्यम से यह उजागर होता है कि कृपलानी ने न केवल गांधी के विचारों को स्वतंत्र भारत के शासन तंत्र में लागू करने का प्रयास किया, बल्कि उन्होंने एक वैकल्पिक राजनीतिक विमर्श की भी स्थापना की, जो आज भी प्रासंगिक है।जब आज के राजनीतिक परिदृश्य में सत्ता का केंद्रीकरण, जन-संवेदनशीलता की उपेक्षा, और नैतिक मूल्यों का क्षरण देखा जाता है, तब कृपलानी की विचारधारा और उनके संघर्ष एक मार्गदर्शक प्रकाशस्तंभ के रूप में उभरते हैं।उनका आग्रह था कि राजनीति का उद्देश्य केवल प्रशासनिक दक्षता नहीं होना चाहिए, बल्कि वह सामाजिक न्याय, नागरिक अधिकारों, और नैतिक आदर्शों की स्थापना का माध्यम बने।

कृपलानी की असहमति और उनके विचारों को इतिहास में हाशिए पर डालना न केवल उनके योगदान की अवमानना है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की वैचारिक समृद्धि की भी उपेक्षा है।उनके गांधीवादी दृष्टिकोण ने यह सिद्ध किया कि भारत का भविष्य केवल आर्थिक प्रगति में नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, विकेंद्रीकरण और मानवीय मूल्यों में निहित है।अतः यह आवश्यक है कि कृपलानी को भारत के वैचारिक विकास में एक अग्रणी स्थान दिया जाए और उनके विचारों को आज के लोकतांत्रिक विमर्श में पुनः स्थापित किया जाए।उनका जीवन और संघर्ष भारतीय राजनीति में वैचारिक ईमानदारी, नैतिक साहस और वैकल्पिक सोच का जीवंत उदाहरण है, जिसकी उपेक्षा करना एक ऐतिहासिक और बौद्धिक अन्याय होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शरण, एस. (2018)।गांधी और अराजकता. नई दिल्ली: इंडियन बुक क्लब।
2. ब्राउन, जे.एम. (2003)।नेहरू: एक राजनीतिक जीवन।न्यू हेवन, सीटी: येल यूनिवर्सिटी प्रेस।

ISSN: 3048-6726
United International Journal of Multidisciplinary Research (UIJMR)
An International Peer- Reviewed Journal; Volume-1, Issue-1, April-June, 2024, pp.40-45

3. जलाल, ए. (2005). "भारत के विभाजन में व्यक्तित्वों की भूमिका"। जर्नल ऑफ साउथ एशियन स्टडीज, 28(2), 123-140।
4. कोपलैंड, आई. (1993)।साम्राज्य के अंतिम खेल में भारत के राजकुमार, 1917-1947। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. फ्रैंक, के. (2002)।इंदिरा: इंदिरा नेहरू गांधी का जीवन।हार्परकोलिन्स।
6. गुहा, आर. (2008). गांधी के बाद का भारत: विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का इतिहास।पैन मैकमिलन.
7. मजूमदार, आर.सी. (1988)।भारत में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (खंड III)।फ़िरमा केएलएम।
↵ मानसेरघ, एन. (सं.). (1971). सत्ता का हस्तांतरण 1942-1947 (खंड XI)।महामहिम का स्टेशनरी कार्यालय।
↳ मेहरोत्रा, एस.आर. (2003)।भारत की स्वतंत्रता और विभाजन की ओर. विकास पब्लिशिंग हाउस.
10. नूरानी, ए.जी. (2000)। संवैधानिक प्रश्न और नागरिकों के अधिकार। ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस।